श्रीकृष्णप्रोक्ता गीताचतुष्टयी में सार्वकालिक नैतिक चिन्तन

प्रो. राजेन्द्र प्रसाद शर्मा 'शिवानन्दनाथ'
वरिष्ठ शोध अध्येता,
भारतीय दार्शनिक अनुसन्धान परिषद्, नई दिल्ली

कुरुक्षेत्र की पवित्र धर्ममयी धरा पर समस्त वैदिक चिन्तन का साररूपी अमृत गीता के रूप में श्रीकृष्ण के द्वारा प्रकट किया गया है। इसमें प्रतिपादित मत स्वयं श्री कृष्ण के ही नहीं है, अपितु अनादि वैदिक परम्परा के हैं, जो वह इन्हें प्रमाणरूप में सादर स्वीकृत करती है। गीता माहात्म्य का यह पद्य यही उद्घोषणा कर रहा है—

सर्वोपनिषदो गाव:, दोग्धा गोपालनन्दन: ।
पार्थो वत्स: सुधीर्भोक्ता, दुग्धं गीतामृतं महत्[1]**।।**

वेदों के ज्ञानकाण्डीय साररूप में उपनिषदों की गणना की जाती है, क्योंकि दर्शन के श्रुतिप्रस्थान के रूप में हमारी चिन्तन परम्परा उन्हें आद्य स्थान प्रदान करती है। गीता स्मृति प्रस्थान में होने पर भी सम्पूर्ण उपनिषदों का सार सरलतम एवं संक्षिप्त रूप में प्रकट कर जन कल्याण का महनीय कार्य सम्पन्न करती है, अत: महाभारतकार इसे 'सर्वशास्त्रमयी' कहते हैं। श्रीकृष्ण के नैतिक चिन्तन एवं दर्शन को अधिगत करने में महाभारतोक्त गीता (भीष्मपर्व २५-४२) परम प्रमाण मानी जाती है तथापि श्रीकृष्ण के वचनों से अनेक ग्रन्थ सुशोभित हो रहे हैं। गीता में १८ अध्याय एवं ७०० श्लोक हैं जिनमें मानव जीवन के उच्चतम नैतिक चिन्तन एवं व्यावहारिक जीवनदर्शन को सुस्पष्ट करते हुए चरम लक्ष्य मुक्ति के सहज मार्ग को शास्त्रीय विधि से विनिर्दिष्ट किया गया है। यह ग्रन्थ आकर्षक संवादशैली या प्रश्नोत्तर रूप में ग्रथित है। यह सत्य है कि गीताशास्त्र सम्पूर्ण विश्व का नीतिशास्त्र है। यह कर्त्तव्य की शिक्षा, समत्व का पाठ, ज्ञान की भिक्षा तथा शरणागति का उपदेश देकर सम्पूर्ण मानव जगत् का अपूर्व कल्याण करता है—

कर्तव्यदीक्षां च समत्वशिक्षां, ज्ञानस्य भिक्षां शरणागतिं च ।
ददाति गीता करुणार्द्रभूता, कृष्णेन गीता जगतो हिताय [2] **।।**

वैदिक दर्शन की अनुपम व्याख्या के रूप में गीता वेदव्यास जैसे ऋषि द्वारा संकलित, आचार्य रामानुज,

वल्लभ, मध्व, निम्बार्क, अभिनवगुप्त, नीलकण्ठ, श्रीधरस्वामी, मधुसूदन सरस्वती, विवेकानन्द, अरविन्दघोष, लोकमान्य तिलक, महात्मा गाँधी, विनोबा भावे, प्रभुपाद, रामसुखदास जैसे आध्यात्मिक सन्त, राजनीति के कर्णधार एवं आचार्य प्रवरों के द्वारा व्याख्यायित है। यह पुराणग्रन्थों में प्रशंसित एवं वेदान्त परम्परा में प्रमाणरूप में स्वीकृत तथा विश्व के सहस्रों ज्ञानिजनों से विवेचित है। नीतिशास्त्रकार के रूप में भी श्रीकृष्ण का योगदान बहुप्रशंसित है। महाभारत के युद्ध में सफल नीतिकार की भूमि का श्रीकृष्ण के द्वारा ही निभायी गयी है—

भीष्मद्रोणतटा जयद्रथजला गाम्भीर्यनीलोत्पला,
शल्यग्राहवती कृपेण वहनी कर्णेन वेलाकुला।
अश्वत्थामविकर्णघोरमकरा दुर्योधनावर्तिनी,
सोत्तीर्णा खलु पाण्डवै: रणनदी कैवर्तक: केशव:[3]।।

यह सत्य है कि महाभारतरूपी रणनदी को पार करने में पाण्डवों के लिए श्रीकृष्ण की भूमिका नौका सञ्चालक चतुर कैवर्तक (मल्लाह) के रूप में रही है। उनके समुचित मार्ग निर्देशन में इस महायुद्ध में विजयश्री की प्राप्ति पाण्डव कर सके हैं। अत: श्रीकृष्ण नीतिशास्त्र, राजनीतिशास्त्र एवं कूटनीति के जगद्गुरु सिद्ध होते हैं। यही नहीं उन्होंने नीतिशास्त्र के प्रौढ मर्मज्ञ होने के साथ अपनी दार्शनिक प्रतिभा का परिचय भी गीता के रूप में प्रदर्शित किया है। उनके द्वारा किये गये दार्शनिक विवेचन के आधार पर उनके प्रति की गयी यह घोषणा भी सार्थक है—कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम्।।

भगवद्गीता सार्वकालिक एवं सार्वभौमिक नैतिक तत्त्वों का विमर्श प्रस्तुत करती है। श्रीकृष्ण के नैतिक दृष्टिकोण एवं दार्शनिक परिशीलन हेतु प्रधानत: इस गीता का ही आश्रय सुधीजन लेते हैं। गीता में अन्तर्निहित चिन्तन महाभारत तथा उपनिषद् आदि में ज्यों-का-त्यों प्राप्त तो होता है पर विकीर्ण रूप में। गीताकार ने अपनी युक्तियों की स्थापना दृढ़तापूर्वक शास्त्रीयरीति से एकत्र की है, यही इस ग्रन्थ का वैलक्षण्य है।

अर्जुनोपाख्यान एवं गीता

महर्षि वाल्मीकि प्रणीत योगवासिष्ठ (महारामायण) में राम एवं वसिष्ठ के संवाद में 'अर्जुनोपाख्यान' भविष्य में होने वाली घटना के रूप में वर्णित है। त्रिकालदर्शी वसिष्ठ, अर्जुन एवं श्रीकृष्ण के संवाद को ७ अध्यायों तथा २५४ श्लोकों में (निर्वाण प्रकरण पूर्वार्द्ध ५२-५८ अध्याय) श्री राम को अनासक्ति हेतु उपदेश करते हैं। इस अर्जुनोपाख्यान में गीता के २४ श्लोक यथावत् उपस्थित हैं। इस उपाख्यान में आत्मा का अकर्तृत्व इस प्रकार साधित किया है कि प्रकृति

या शरीर को कर्त्ता होने से आत्मा में अकर्तृत्व, अभोक्तृत्व के कारण अनेकत्व का परिहार होकर ब्रह्मैक्य सिद्ध होता है—

अकर्तृत्वादभोक्तृत्वमभोक्तृत्वात् समैकता।
समैकत्वादनन्तत्वं ततो ब्रह्मत्वमाततम्।।
नानात्वमलमुत्सृज्य परमात्मैक्यतां गतः।
कुर्वन् कार्यमकार्यञ्च नैव कर्त्ता त्वमर्जुन[4]।।

इसी प्रकार निष्काम कर्मयोग के विषय में श्रीकृष्ण युक्ति देते हैं—

न कुर्याद् भोगसंत्यागं न कुर्याद् भोगभावनम्।
स्थातव्यं सुसमेनैव यथाप्राप्तानुवर्तिना[5]।।

अर्थात् न भोगों का त्याग अभीष्ट है, न भोगों की भावना, इस दोनों की समता या सामञ्जस्य ही कर्मयोग है। इस उपाख्यान का सार है—यह जगत् जीव का स्वप्न है। इसमें असंसक्ति से ही जगत् स्वप्न का नाश होता है। इसलिये वसिष्ठ ने अर्जुनाख्यान की अवतारणा की है। अहंकार और उसका त्याग, उपास्य एवं ज्ञेय रूप तथा अभेद की व्यवस्थिति इसमें वर्णित है। सुख एवं दुःखादि सम्बन्ध, उनका हेतु तथा हानि की परिचर्चा यहाँ की गयी है। देह के नाश पर आत्मा का अनाश, मूढ एवं तत्त्वज्ञ के लिए समान है। मूढ जीव भ्रान्ति के कारण जन्मादि को प्राप्त करता है, परन्तु ज्ञानी मुक्त होता है जो यहाँ वर्णित है। जीवमुक्ति की प्रतिष्ठा अर्जुन को उपदिष्ट है। चित् का सत्त्वरूप, जगद्रूप एवं मनश्चित्र यहाँ विस्तार से कहे गये हैं। मन के निर्वासन की दृष्टि, सुखद्वय तथा आत्मशेष की दृष्टि भी यहाँ निरूपित है। तत्त्वबोध से अविद्या एवं वासना का क्षय सम्भव होता है। अर्जुन को यह प्राप्त हुआ है और यही उसकी कृतार्थता है। यह सात अध्यायों का सार संक्षेप टीका में कहा गया है।

इस उपाख्यान से प्रतीत होता है कि गीता इन्हीं पूर्वकथित नैतिक जिज्ञासाओं का प्रमाणपूर्वक समाधान प्रस्तुत करती है।

गीता का प्रमुख नैतिक सिद्धान्त : कर्मयोग

गीता के नैतिक चिन्तन का मूलाधार कर्मयोग का सिद्धान्त है। स्वयं श्रीकृष्ण कह रहे हैं—

संन्यास: कर्मयोगश्च निश्रेयस्करावुभौ ।

तयोस्तु कर्मसंन्यासात् कर्मयोगो विशिष्यते[6] ।।

संन्यास और कर्मयोग दोनों नि:श्रेयस्कर है, परन्तु इन दोनों में कर्मसंन्यास की अपेक्षा कर्मयोग ही अधिक श्रेष्ठ है। प्रसिद्ध दार्शनिक प्रो. सङ्गमलाल पाण्डेय गीता की कथावस्तु को शाश्वत नैतिक कथा के रूप में स्वीकारते हैं—'ऐतिहासिक अर्जुन नैतिक मन है और ऐतिहासिक कृष्ण विवेक है। ऐतिहासिक कुरुक्षेत्र हमारा व्यक्तित्व है। इस प्रकार ऐतिहासिक घटना नैतिक घटना की मूर्ति है।[7]' (नीतिशास्त्र का सर्वेक्षण, पृ. २०२)

अर्जुन के लिए लड़ना कर्म है, नहीं लड़ना अकर्म है। अत: अकर्म से कर्म अच्छा है, परन्तु लड़ने में क्या हिंसा नहीं है? क्या हिंसा पाप नहीं है? इन नैतिक प्रश्नों की समीक्षा एवं समाधान गीता प्रस्तुत करती है। इन प्रश्नों की मीमांसा के फलस्वरूप गीता में तत्त्व ज्ञान (ज्ञानयोग) और कर्मशास्त्र (कर्मयोग) तथा भक्तिशास्त्र (भक्तियोग) पर गहन विचार किया गया है। ये सब मानसिक घटनायें हैं, जिनका बाहरी समय प्रवाह से सम्बन्ध नहीं है। ये नीतिशास्त्र के अनुसार मूलभूत प्रश्न तथा उनका अपना विचारक्रम है।

मानव चेतना के अन्तर्गत तीन शक्तियों का समावेश है—ज्ञानशक्ति, क्रियाशक्ति एवं इच्छाशक्ति। इन्हीं के आधार पर प्रधानत: विविध नैतिक जिज्ञासा या समस्याओं का उद्भव होता है जिनका गीता समुचित रूप में समाधान (मार्ग) प्रस्तुत करती है।

१. समुचित ज्ञान की समस्या

मनुष्य अल्पज्ञ जीव होने के कारण स्वभावत: अच्छाई एवं बुराई का किञ्चित् ज्ञान तो रखता है परन्तु स्पष्ट एवं परिपूर्ण ज्ञान नहीं रखता। सामान्य मनुष्य की तो बात ही क्या, विशेषज्ञ को भी पूर्णज्ञान या समुचित ज्ञान प्राप्त नहीं होता। इस विषय के अधिकृत गुरुजनों से ही सच्चा एवं पूरा ज्ञान जाना जा सकता है, अत: गुरु से ज्ञान लेने की परम्परा भारत में आदिकाल से प्रचलित है। अच्छाई या बुराई को समुचित रूप में जानकर ही मनुष्य तदनुरूप कार्य कर सकता है अन्यथा उसकी स्थिति डावांडोल रहती है। अर्जुन की यही समस्या इन शब्दों में अपने गुरु श्रीकृष्ण के सम्मुख प्रस्तुत होती है–

न चैतद्विद्म: कतरन्नो गरीयो यद्वा जयेम यदि वा न जयेयु:।

यानेव हत्वा न जिजीविषामस्तेऽवस्थिता: प्रमुखे धार्तराष्ट्रा: ।।

कार्पण्यदोषोपहतस्वभाव: पृच्छामि त्वां धर्मसम्मूढचेता:।

यच्छ्रेय: स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे, शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्[8]।।

हे कृष्ण मैं नहीं जानता हूँ कि लड़ना मेरे लिए श्रेयस्कर है अथवा नहीं लड़ना। मैं तो यह भी नहीं जानता हूँ कि मेरी विजय श्रेयस्कर है या मेरे शत्रुओं की ...। अत: जो श्रेयस्कर मार्ग है वह मुझे बताइये। तब श्रीकृष्ण ने गुरु की तरह इस समस्या का विशद विवेचन किया, कि कर्म क्या है? अकर्म क्या है?तथा विकर्म क्या है। इसको तो विद्वान् भी पूर्णत: नहीं जानते हैं। वस्तुत: कर्म को जान कर ही मनुष्य उससे मुक्त हो सकते हैं—

किं कर्म किमकर्मेति कवयोऽप्यत्र मोहिता:।
तत्ते कर्म प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात्।।
कर्मणो ह्यपि बोद्धव्यं बोद्धव्यं च विकर्मण:।
अकर्मणश्च बोद्धव्यं गहना कर्मणो गति:[9]।।

अत: मानव मात्र के लिए समुचित ज्ञान ही प्रथम समस्या है, जो विना तत्त्वज्ञान के समाधान नहीं हो सकती। वैदिक दर्शन इस विषय में हमारी सहायता करता है। नित्य एवं अनित्य का विवेचक रूपी विवेक ही इसका उपाय दिखता है।

२. उचित कर्त्तव्य पालन की समस्या

यह मानव के कर्म या व्यवहार, आचरण से जुड़ी है। मनुष्य कर्म के उचित एवं अनुचित का ज्ञान करने पर भी उचित कर्त्तव्य के पालन में प्रवृत्त नहीं होता और न ही अनुचित कर्म के आचरण से निवृत्त होता है। जैसा कि महाभारत के इस पद्य में स्पष्टत: कहा है—

जानामि धर्मं न च मे प्रवृत्ति:, जानाम्यधर्मं न च मे निवृत्ति:।

यद्यपि कर्म के औचित्य एवं अनौचित्य से अभिज्ञ होकर मनुष्य को सत्कर्म का पालन एवं असत्कर्म का परित्याग करना चाहिये, परन्तु मनुष्य: प्राय: इस विषय में मोहित हो जाता है। इस कर्तव्यपालन की समस्या से ग्रस्त अर्जुन पूछ ही बैठते हैं—

अथ केन प्रयुक्तोऽयं पापं चरति पुरुष: ।
अन्निछन्नपि वार्ष्णेय बलादिव नियोजित:[10] ।।

हे कृष्ण! किस प्रधानकारण से प्रयुक्त हुआ यह पुरुष न चाहते हुए भी राजा के प्रयुक्त सेवक की तरह बलपूर्वक लगाया हुआ पाप कर्म का आचरण करता है। इस प्रकार कर्त्तव्य पालन की यह दूसरी नैतिक समस्या मनुष्यों के सामने सामान्यत: उपस्थित होती है, जिसका कारण एवं निदान प्रत्येक मनुष्य को जानना चाहिये।

३. उचित ज्ञान एवं कर्तव्यपालन के लक्ष्य चरमपुरुषार्थ की समस्या

कोई व्यक्ति एक बार अच्छाई एवं बुराई को समुचित रूप में जान लेता है, तो फिर उचित कर्त्तव्य का पालन भी करता है। तब उसकी जिज्ञासा होती है कि इसका लक्ष्य, या फल क्या है? क्या वह मुझे प्राप्त हो गया है? यदि उसे लक्ष्य नहीं मिला तो सब कुछ बेकार है। वस्तुत: जब तक नि:श्रेयस् की प्राप्ति नहीं होती, तब तक पूर्णता नहीं है। नैतिक ज्ञान एवं नैतिक आचरण से नि:श्रेयस् अनिवार्यत: जुड़ा हुआ है। इस साधन से यह उत्तम गति नहीं मिलती तब क्या होगा? नि:श्रेयस् का अर्थ सन्तोष श्रद्धा, शान्ति आदि पूर्ण गुणों की प्राप्ति है। अन्यथा मनुष्य फिर भटकन में पड़ जाता है, अत: अर्जुन इस प्रश्न को भी उठाते हैं—

अयति: श्रद्धयोपेतो योगाच्चलितमानस:।
अप्राप्य योगसंसिद्धः कां गतिं कृष्ण गच्छति ।।
क्वचिन्नोभयविभ्रष्टश्छिन्नाभ्रमिव नश्यति ।
अप्रतिष्ठो महाबाहो विमूढो ब्रह्मण: पथि[11]**।।**

हे कृष्ण यदि श्रद्धा से युक्त व्यक्ति का योग से मन चलायमान हो गया, तो उसे योगसिद्धि तो मिलेगी नहीं, फिर कौन-सी गति प्राप्त होगी? कहीं वह ज्ञान और कर्म दोनों से भ्रष्ट होकर बादलों की तरह छिन्न-भिन्न तो नहीं हो जायेगा? इस मार्ग पर पूर्ण विश्वास तो तब ही सकता है जब उसको यह पता लगे, कि उसके उपदेशक पूर्णज्ञानसम्पन्न है। बिना पूर्ण ईश्वर के दर्शन हुए इस समस्या का समाधान नहीं है।

मानव के नैतिक आचरण से जुड़ी हुई तीनों समस्याओं का समाधान गीता इस प्रकार प्रस्तुत करती है। समुचित ज्ञान की समस्या अपने तत्त्वज्ञान एवं दर्शन को समझने पर हल हो जाती है तथा उससे कर्मयोग का सिद्धान्त गीता निष्कर्ष रूप में उपस्थित कराती है। कर्मयोग की सैद्धान्तिक स्थापना हेतु श्रीकृष्ण ने गीता के दूसरे अध्याय में अनेक प्रबल एवं अकाट्य युक्तियों का परिस्फुटन किया है। सारत: समझ सकते हैं कि बिना कर्म के स्वातन्त्र्य लाभ नहीं है। कर्मसंन्यास से संन्यास की भी सिद्धि नहीं होती (गीता ३.४)। क्षणमात्र भी मनुष्य अकर्मी नहीं रह सकता (३.५)।

शरीरयात्राभी बिना कर्म सम्भव नहीं (३.८)। कर्म सृष्टि का नियम है, जो इसका उल्लङ्घन करता है, वह वृथा जीता है और लोकसंग्रह (सामाजिक व्यवस्था) के लिए भी कर्म आवश्यक है (३.२०)।

परमात्मा भी कर्म इसलिए करता है कि उसको देख कर ही अन्य जन उनका अनुकरण करते हैं। सभी मनुष्य अकर्मी हो तो यह समाज ही नष्ट हो जाये। यद्यपि कर्म अनेक हैं, तब मनुष्य कौन-से कर्म करे। संसार में भगवान् ने कार्य एवं अकार्य की व्यवस्था कार्यविभाजन के आधार पर चातुर्वर्ण्य एवं चातुराश्रम्य के रूप में शास्त्रों में प्रतिपादित की है। मनुष्य सामान्य एवं विशेष धर्मों का आचरण करे। गीता स्वधर्मपालन को श्रेष्ठ मानती है तथा परधर्म को अपनाने का निषेध करती है—

स्वधर्मे निधनं श्रेय: परधर्मो भयावह:।

श्रुति, स्मृति एवं सदाचार के अनुकूल स्वधर्म ही समुचित कर्म है। इससे पूर्ण विरक्ति संभव है। अकर्म तथा विकर्म है निषिद्ध कर्मों का अनुष्ठान। मनुष्य इनको समुचित रूप में समझ कर स्वकर्म कर पालन करे।

कर्तव्यपालन की समस्या के निदान हेतु हम देखते हैं कि हमारी कामनाएँ, इच्छाएँ या वासनाएँ हमें अज्ञान से आवृत्त करती हैं, अज्ञान के कारण हम सत्कर्म के प्रति प्रेरित नहीं होते हैं तथा असत्कर्म से निवृत्ति नहीं हो पाती है। अत: इस बाधा का प्रधान कारण कामना का नाश करना चाहिये—

जहि शत्रुं महाबाहो कामरूपं दुरासदम् [12]**।**

यहां कामनारूपी शत्रु का मनोवैज्ञानिक दृष्टि से विश्लेषण किया गया। जब भोग्य विषयों के सङ्ग से पुरुष आसक्त होता है, तब क्रमश: काम, क्रोध, मूढता, स्मृतिनाश एवं स्वयं की बुद्धिनाश रूपी पतन के मार्ग में पतित होता है। इसे गीता इस प्रकार स्पष्ट करती है—

ध्यायतो विषयान् पुंस सङ्गस्तेषूपजायते।
सङ्गात्संजायते काम: कामात्क्रोधोऽभिजायते ।।
क्रोधाद् भवति सम्मोह: सम्मोहात् स्मृतिविभ्रम: ।
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात् प्रणश्यति [13]**।।**

कर्त्तव्यपालन में बाधक काम या इच्छा ही है, और उसकी निवृत्ति आत्मसंयम द्वारा ही हो सकती है।

अब यह जिज्ञासा उठती है कि कर्म का पालन विषयों से सम्पर्क बढ़ाता है, अत: यह प्रवृत्ति की दृढ़ता को प्रस्तुत करता है जबकि आत्मसंयम विषयों से सम्पर्क त्यागने की आवश्यकता को प्रतिपादित करता है, तो निश्चय ही यह निवृत्तिसाधक है। इस नैतिक उलझन का समाधान एकमात्र निष्काम कर्मयोग है। गीता कर्मवाद एवं त्यागवाद का समन्वय इस प्रमुख सिद्धान्त के माध्यम से करती है। कर्त्तव्य या कर्म के पालन में फलेच्छा का त्याग करने पर आसक्ति का नाश हो जायेगा तथा कर्म के करने से अकर्मवाद की अकर्मण्यता भी दूर हो जायेगी, अत: ठीक ही कहा है—

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन ।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि ।।
योगस्थ: कुरु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा धनञ्जय ।
सिद्ध्यसिद्ध्यो: समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते[14] **।।**

अर्थात् कर्तव्यपालन की दृष्टि से किया गया कर्म ही कर्म है। इसी में लोकसंग्रह निहित है। अन्य इच्छाओं से किया गया कर्म सच्चा कर्म नहीं है। समुचित कर्त्तव्यों का आचरण ही वास्तविक कर्म है। इसी प्रकार वास्तविक कर्मसंन्यास यज्ञ, दान एवं तप आदि पावन कर्मों का नहीं है। ये त्याज्य कर्म नहीं है। इस प्रकार गीता अपने अद्वितीय विवेचन से संन्यासवाद एवं कर्मवाद का समन्वय कर्मवाद में फलेच्छा ds त्याग के रूप में करती है तथा संन्यासवाद में समुचित कर्तव्यपालन का कर्मवाद प्रविष्ट कराके निष्काम कर्ममार्ग को सयुक्तिक सुस्थापित करती है, जो सार्वभौमिक एवं सार्वकालिक तथ्य के रूप में नीतिशास्त्र में स्वीकार्य है।

उचित ज्ञान एवं कर्तव्यपालन के पश्चात् उठने वाली चरम लक्ष्यमूलक समस्याओं का समाधान मोक्षप्राप्ति ही है। मानवीय बुद्धि प्रयत्न कर बार-बार नियन्त्रित करने पर या तो घोर कर्मवाद या घोर संन्यास की ओर उन्मुख हो जाती है। जिससे मनुष्य परमलक्ष्य नि:श्रेयस की प्राप्ति से भटक जाते हैं, अत: ईश्वर पर श्रद्धा होने से उसके शरणागत हो जाने का सरल निष्काम मार्ग को भी प्रस्तुत करती है, क्योंकि वास्तविक नैष्कर्म्य तभी है, जब ईश्वर के प्रति पूर्ण समर्पण हो, नहीं तो विषयों की कामना पुन: पुन: प्रकट होकर भ्रमित कराने का प्रयास नहीं छोड़ेंगी। यद्यपि सांसारिक इच्छायें मिटती है , आत्मसंयम से। जब आत्मशुद्धि होती है तब श्रद्धा का उदय होता है, उससे ज्ञान में पूर्णता एवं परमानन्द की प्राप्ति होती है तथा नि:श्रेयस भी सहज अधिगत हो जाता है। इस समस्या का समाधान भक्ति से ही हो सकता है—

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु ।
मामैवष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे[15] **।।**

अपना मन मेरे ऊपर केन्द्रित करो, मेरी भक्ति करो, मेरा यज्ञ करो, मुझे नमस्कार करो, इस प्रकार तुम मुझे ही प्राप्त करोगे। तुम मेरे प्रिय हो इस कारण मैं तुमको बतला रहा हूँ। इस प्रकार गीता में इच्छा को भगवद्भक्ति की ओर मोड़ा गया है क्योंकि इच्छाओं का अन्त ही नहीं है, वे तो प्रभु समर्पण से ही विलीन हो सकती है।

गीता में जीवमात्र की समता का सिद्धान्त

गीता ही जीवनमात्र में समता की उद्घोषणा करती है—

विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि।

शुनि चैव श्वपाके च पण्डिता: समदर्शिन:।।

अर्थात् विद्या-विनय से सम्पन्न ब्राह्मण में, गौ में, हाथी में, कुत्ते और चाण्डाल में भी पण्डितजन समभाव से देखने वाले हैं। सब एक ही निर्विकार ब्रह्म के अंश हैं, अत: सभी में समान दृष्टि ज्ञानी रखते हैं। अद्वैत की दृष्टि से सभी प्राणियों में भगवद्रूप की सत्ता एवं एकता सिद्ध हो जाती है तथा भेदभाव की सम्भावना भी नहीं रहती —

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।

ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शन:।।

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति।

तस्याहं न प्रणश्यामि स च न मे प्रणश्यति [16]**।**

सर्वप्राणियों में आत्मा को तथा आत्मा को सभी प्राणियों में देखने वाले व्यक्ति आत्मा में सर्वत्र समदर्शन करते हैं। मुझे सर्वत्र तथा मुझमें सब कुछ देखने वाले समदर्शी योगी के लिए मैं कभी अदृश्य नहीं होता हूँ तथा वह ज्ञानी भी मुझसे अदृश्य या परोक्ष नहीं होता, क्योंकि उसका एवं मेरा स्वरूप एक ही है। इस प्रकार अनेक युक्ति से श्रीकृष्ण समता की प्रतिष्ठा करते हैं, अत: सिद्ध होता है कि गीता मनुष्य के वैयक्तिक एवं सामाजिक पक्ष का सुन्दर समन्वय करती है। व्यक्ति की स्वतन्त्रताप्राप्ति तथा सामाजिक-सुरक्षा का सामञ्जस्य स्थापित करती है। आत्मिक लाभ एवं लोकसंग्रह, भोगवाद एवं कर्मवाद, अकर्मवाद एवं कर्मवाद का परस्पर अन्वय स्थापित करते हुए निष्काम भाव से कर्म करने पर आत्मिक एवं शारीरिक अभ्युदय की संगति प्रदान करती है। इसलिए गीता भारतीय जागरण में प्रभावी भूमिका निभाती है। विवेकानन्द, तिलक, महात्मा गाँधी, श्री अरविन्द, विनोबा भावे इससे नवीन शक्ति प्राप्त करते हैं। जैन परम्परा के सम्यक् ज्ञान, दर्शन और चरित्र तथा बौद्धों के प्रज्ञा, शील एवं समाधि भी इसके नैतिक चिन्तन का समर्थन करते हुए

दिखते हैं, अत: गीता विश्व का नीतिशास्त्र सिद्ध होता है।

अनुगीता का नैतिक एवं दार्शनिक चिन्तन

युद्ध के बाद श्रीकृष्णार्जुन संवाद के रूप में प्राप्त अनुगीता विशेषत: मोक्षमार्ग का प्रतिपादन करती है। वहां साधक को अध्यात्मोन्मुख करने में वेदान्त की युक्तियां ज्ञानमार्ग को सर्वोच्चता प्रदान करने के लिए दी गयी हैं। इसी प्रकार भागवत महापुराण की उद्धव गीता में भी श्रीकृष्ण ज्ञानमार्ग एवं अध्यात्म को प्रधानता प्रदान कर पराभक्तिरूपी ज्ञान से नि:श्रेयस की सिद्धि का निरूपण करते हैं। इनमें विवेचित नैतिक चिन्तन एवं दार्शनिक तत्त्वों का साररूप परिचय इस प्रकार है-

अनुगीता महाभारत के आश्वमेधिक पर्व में अध्याय १६-५१ तक (३६ अध्यायों में) उपलब्ध है। श्लोक संख्या १०४१ है। इस गीता में तीन उपगीताएँ भी हैं—काश्यप, अम्बरीष एवं ब्राह्मणगीता। महाभारत के युद्ध के पश्चात् श्रीकृष्ण तथा अर्जुन सभाभवन में रहने लगे, तब एक बार अर्जुन पूछते हैं कि हे भगवान् युद्ध के समय आपके ईश्वरीय रूप का दर्शन हुआ। आपने जो गीता ज्ञान मुझे दिया, अब चित्त विचलित होने के कारण नष्ट (विस्मृत) हो गया है। मुझे पुन: वही ज्ञान सुना दें क्योंकि इधर आप जल्दी ही द्वारका जाने वाले हैं। तब श्रीकृष्ण उपालम्भ देते हैं कि उस दिव्य ज्ञान को विस्मृत कर तुमने अच्छा नहीं किया, अब वह ज्ञान मैं प्रयास करने पर भी पूर्णत: नहीं बता सकूँगा। इस विषय में तुम्हें मैं एक ब्राह्मण का इतिहास कहता हूँ, जो स्वर्गलोक से मेरे पास आया था। जब मैंने उससे मोक्षधर्म के विषय में पूछा, तब उसने काश्यप ब्राह्मण का प्रसङ्ग सुनाया। दिव्य योगी काश्यप ने आकाश में स्थित सिद्ध ब्राह्मण से कुछ प्रश्न किये, जीव की गति के विषय में। जीव के गर्भ प्रवेश, आचार, धर्म, कर्म फल की अनिवार्यता के साथ संसार सागर से तरने का उपाय भी पूछा। सिद्ध ने इन सबके उत्तर दिये तथा मोक्ष प्राप्ति के उपाय भी बताये। इस प्रकार के विवेचन के साथ चार अध्यायों में यह काश्यप नामक उपगीता पूर्ण होती है।

तत्पश्चात् बीसवें अध्याय से ब्राह्मणगीता का प्रारम्भ होता है, जिसमें एक ज्ञानयोगी ब्राह्मण से उसकी पत्नी संवाद करती है कि आप कुछ भी नहीं करते हैं, केवल एक पेड़ के नीचे बैठ कर ध्यान लगाते हैं। तब ब्राह्मण ने (१६ अध्यायों में ब्राह्मण गीता में) मोक्ष के आधारभूत ज्ञान मार्ग की साधना को स्पष्ट किया। सब यज्ञों में श्रेष्ठ ज्ञानयज्ञ को माना गया है जो इन्द्रियों के द्वारा सम्पन्न होता है। अनेक रूपकों एवं कथाओं के माध्यम से ब्राह्मण ने गुह्य आध्यात्मिक ज्ञान को स्पष्ट किया है। मध्य में प्रसङ्गवश परशुराम एवं जनक की कथा भी प्रस्तुत की गयी है। ब्राह्मण ने ज्ञाननिष्ठता को सिद्ध किया है। अन्त में श्रीकृष्ण ब्राह्मण, ब्राह्मणी एवं क्षेत्रज्ञ का आध्यात्मिक रहस्य स्पष्ट करते हैं। यह ब्राह्मणगीता

आकार में कुछ छोटी है, पर इसमें उच्चस्तरीय अध्यात्म का विवेचन बड़ी बोधगम्य शैली में किया गया है। इसमें आरम्भ में ही यह कह दिया है कि सामग्री, समिधा, घृत, सोम आदि से यज्ञ, हवन करना भी कर्म ही है, पर इस कर्म को राक्षस नष्ट करते रहते हैं। इसलिये सर्वोत्तम धर्म कर्त्तव्य आत्मा का ध्यान करना ही है।

ज्ञान-यज्ञ में पाँचों इन्द्रियाँ तथा मन और बुद्धि को ही अग्नि की सात जिह्वाएँ मान कर यज्ञ-कर्म की व्याख्या की गयी है। इसमें स्पष्ट किया गया है कि, "सूँघने वाला, भक्षण करने वाला, देखने वाला, स्पर्श करने वाला, सुनने वाला, मनन करने वाला और समझने वाला—ये सातों इन्द्रियाँ श्रेष्ठ ऋत्विज हैं। ये सातों होता सात हविष्यों का, सात रूपों में विभाजित चिदग्नि वैश्वानर में भली प्रकार हवन कर, अपने तन्मात्रादि योनियों में शब्दादि विषयों की उत्पत्ति करते हैं। पृथ्वी, वायु, आकाश,जल, तेज, मन और बुद्धि—ये ही सात योनियाँ कही गयी हैं। इनके सभी गुण हविष्यरूप हैं। वे अग्निजनित गुण में प्रविष्ट होते हैं, तथा वे ही अन्तःकरण में संस्कार रूप से स्थित रह कर अपनी योनियों में उत्पन्न होते हैं।"

ब्राह्मणगीता में अध्यात्म विषयक समस्या को अनेक प्रकार से बहुत सूक्ष्म रूप में सुलझाया गया है और कहा है कि "मैं तो योगरूपी ज्ञानयज्ञ का ही अनुष्ठान किया करता हूँ , जिसमें ज्ञानाग्नि को प्रज्ज्वलित किया जाता है। इसमें प्राणवायु को स्तोत्र, अपान को शस्त्र और सर्वस्व-त्याग को ही सर्वोत्तम दक्षिणा समझना चाहिये। अहंकार, मन और बुद्धि—ये तीनों ब्रह्मस्वरूप होकर होता, अध्वर्यु और उद्गाता होते हैं। नारायण को जानने वाले ज्ञानी पुरुष इस ज्ञानयोग-यज्ञ को वेदानुकूल बतलाते हैं। वही नारायण इस सम्पूर्ण विश्व का संचालक है। जैसे जल नीचे की ओर बहता है, वैसे ही ज्ञानी व्यक्ति उसकी प्रेरणा से ही कार्य किया करता है। यही मोक्ष का सच्चा ज्ञान मार्ग है।" अध्याय ३१ में अम्बरीषगीता ९ श्लोकों में कही गई है।

ब्राह्मणगीता के बाद भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुन को मोक्ष धर्म का विस्तृत विवेचन समझाते हैं। ब्रह्माजी के द्वारा उत्पन्न सत्त्वगुण, रजोगुण एवं तमोगुण के कार्य तथा फलों का प्रतिपादन करते हैं। त्रिगुणात्मिका प्रकृति के नामों का वर्णन कर उसके स्वरूप को जानने के फल भी बताते हैं। प्रकृति के भेद महत्, अहंकार, पञ्च महाभूत, इन्द्रियाँ आदि के स्वरूप को बतला कर निवृत्तिमार्ग का उपदेश करते हैं। चराचर प्राणियों के कर्त्तव्य तथा धर्म के लक्षण को स्पष्ट करते हुए विषयों की अनुभूति, प्रक्रिया तथा क्षेत्रज्ञ की विलक्षणता विवेचित करते हैं।

सभी पदार्थों के आदि और अन्त के वर्णन के साथ ज्ञान की नित्यता स्पष्ट करते हैं। अन्तिम भाग में ब्राह्मण आदि वर्णधर्म तथा आश्रम धर्म को स्पष्ट करके मुक्ति के साधनों में, देहरूपी वृक्ष को ज्ञान रूपी खड्ग से काटने का विधान

बतलाते हैं तथा विस्तार से आत्मा एवं परमात्मा का स्वरूप प्रतिपादित करते हैं। अन्त में सत्त्व एवं पुरुष के भेद को स्पष्ट करके ज्ञान की सर्वश्रेष्ठता उद्घोषित करते हैं। कर्त्तव्यों में अहिंसा सर्वश्रेष्ठ है। तप, स्वाध्याय, दान आदि साधनों की भी कहीं-कहीं आवश्यकता पड़ती ही है। अन्त में इस अध्यात्मवाद के अन्तर्गत ज्ञान के पूर्णतया आचरण का उपदेश देकर श्रीकृष्ण द्वारका के लिए प्रस्थान करते हैं।

उद्धवगीता का दार्शनिक एवं नैतिक चिन्तन

यह गीता भागवतपुराण के एकादश स्कन्ध के अध्याय ७ से २९ तक है। इसमें कुल १०३० श्लोक है। उद्धव को जब ज्ञात होता है, कि भगवान् श्रीकृष्ण इस धरातल से शीघ्र प्रयाण करने वाले हैं, तो ब्रह्मज्ञान विषयक जिज्ञासा रखते हैं। तब भगवान् श्रीकृष्ण ने उद्धव की समग्र जिज्ञासाओं का समाधान इस दिव्य गीता के माध्यम से किया। यह गीता परमपवित्र भागवत पुराण के दार्शनिक तत्त्वों का सारभूत अंश है। इसमें श्रीकृष्ण सांसारिक वासनाओं को त्याग कर भगवद्भक्ति का उपदेश देते हैं, तब उद्धव कहते हैं कि विषयी पुरुष के द्वारा इन्द्रियनिग्रह असम्भव है। संसार त्यागना कोई सहज सम्भव कार्य नहीं है तो भगवान् श्रीकृष्ण अवधूत दत्तात्रेय एवं राजा यदु का संवाद सुनाते हैं।

दत्तात्रेय ने वैराग्य के उत्पादक २४ गुरुओं से निर्देश लिये हैं। इन २४ गुरुओं से शिक्षा ग्रहण कर वे अद्भुत वैरागी बने। दत्तात्रेय के २४ गुरु हैं—पृथिवी, वायु, आकाश, जल, अग्नि, चन्द्रमा, सूर्य, कबूतर, अजगर, समुद्र, पतङ्ग, भौंरा या मधुमक्खी, हाथी, शहद निकालने वाला, हरिण, मछली, पिङ्गला वेश्या, कुरर पक्षी, बालक, कुमारी कन्या, बाण बनाने वाला, सर्प, मकड़ी और भृङ्गी कीट। इन गुरुओं से उनके सद्गुणों की शिक्षा ग्रहण करके ही दतात्रेय में दिव्यज्ञान का उदय हुआ । शिक्षार्थियों के लिए इन्हीं गुरुओं का आचरण बड़ा शिक्षाप्रद है। इनसे सीखे गये गुण मानव के आध्यात्मिक जीवन के उत्थान हेतु परमावश्यक है। भगवान् इस गीता में लौकिक एवं पारलौकिक भोगों की असारता का युक्तिसंगत प्रतिपादन करते हैं। इसमें वासनाबद्ध एवं मुक्त भक्तजनों के स्वरूप का स्पष्टीकरण है। सत्सङ्ग की महिमा तथा निष्काम कर्म की विधि सुस्पष्ट की गयी है।

हंस रूप में सनकादि को दिये गये उपदेशों का वर्णन है। इस गीता में भक्तियोग की महिमा का विस्तृत शास्त्रीय विवेचन है। साधना के बीच मिलने वाली सिद्धियाँ भक्तिभाव में बाधक बनती हैं, अत: भक्तों को उनसे दूर ही रहना चाहिये। इस निमित्त भगवान् की विभूतियों का विस्तार में प्रतिपादन है। मानव के विशेष धर्मवर्णाश्रम का भी विवेचन है। प्रसङ्गत: वानप्रस्थ एवं संन्यासी के कर्म भी यहाँ निरूपित किये गये हैं। मानव के सामान्य धर्म यम, नियम आदि का भी शास्त्रीय विवेचन है, जो भक्तिमार्ग में पूर्णत: आवश्यक होता है। मोक्ष के साधन स्वरूप ज्ञानयोग, कर्मयोग तथा

भक्तियोग का प्रौढ़ शास्त्रीय तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करते हुए सिद्ध किया है, कि वैराग्यप्रधान साधक ज्ञानमार्ग के, वैराग्यरहित सकाम साधक कर्मयोग के तथा जो न विरक्त है न आसक्त, केवल श्रद्धालु हैं, वे सब भक्ति के द्वारा ही मोक्ष के अधिकारी बनते हैं। अधिकारियों के भेद से मोक्षमार्ग भी त्रिविध है।

विषयभोगानुरागी जन्म जन्मान्तर तक संसार में ही भटकते रहेंगे। इसके बाद सांख्यदर्शन की तत्त्वमीमांसा का विवरण दिया गया है। पुरुष एवं परम पुरुष के स्वरूप का भी निर्णय है। इस गीता में एक तितिक्षु ब्राह्मण का उपाख्यान भी प्रस्तुत हुआ है। अर्थ के कारण पन्द्रह अनर्थ पैदा होते हैं—चोरी, हिंसा, झूठवचन, दम्भ, काम, क्रोध, गर्व, अहंकार, भेदबुद्धि, वैर, अविश्वास, स्पर्द्धा, लम्पटता, जुआ और शराब। अर्थपिपासु धनी ब्राह्मण के सम्पूर्ण धन के नष्ट होने पर उसमें अर्थशून्यताके कारण उत्कट वैराग्य उत्पन्न होता है। चूँकि अर्थ के अनर्थकारक रूप को साक्षात्करके वह वैरागी बन कर प्रभुभक्ति में सर्वात्मना लीन हो जाता है। मौनी बन कर सांसारिक सर्वविध आसक्ति के बिना बहुविध विघ्न बाधाओं से ग्रसित होकर भी मन को पूर्णत: सारतत्त्व भक्ति में लगाता है तथा ज्ञान एवं वैराग्य के माध्यम से परमगति को प्राप्त कर लेता है। यहाँ महत्त्वपूर्ण तथ्य है कि उसके धन के नष्ट होने पर ही उसके सारे क्लेश भी दूर हो गये तथा ब्रह्मज्ञान में वह पूर्णनिष्ठ हो गया, अत: परम ज्ञान की प्राप्ति में धन का कोई महत्त्व सिद्ध नहीं होता है।

इस गीता में सांख्ययोग के अनुसार दार्शनिक विचार तथा तीन गुणों की वृत्तियों का निरूपण भी किया गया है। उदाहरणार्थ इन्द्रिय कामासक्त पुरुरवा का उर्वशी के लिये विलाप तथा उसके वियोग से वैराग्योत्पत्ति की कथा वर्णित है। अन्त में परमज्ञान होने पर वह उर्वशी के वियोगजन्य दु:ख से मुक्त हुआ। उपासनायोग तथा उसकी विधि के सविस्तार वर्णन के साथ भक्त के करणीय कर्मों का प्रतिपादन हुआ है। अन्त में परमार्थ एवं भागवत धर्मों का विस्तृत वर्णन है। श्रीकृष्ण से सम्पूर्ण उपदेश प्राप्त कर उद्धव बदरिकाश्रम में जाकर जप, तप आदि का आचरण करने हेतु प्रस्थान करते हैं। इस गीता का सारांश यह है, कि विवेकियों के विवेक और चतुरों की चतुराई की पराकाष्ठा इसी में है, कि वे अविनाशी और असत्य शरीर के द्वारा अविनाशी, सत्यस्वरूप, भगवान् को प्राप्त कर लेवें।

परमज्ञान की प्राप्ति का ऐसा उच्चस्तरीय प्रामाणिक शास्त्रीय विवेचन अन्यत्र दुर्लभ है, अत: यह कथन सटीक ही है कि 'यह उद्धवगीतारूप ज्ञानामृत आनन्द महासागर का सार है, जो श्रद्धा के साथ इसका सेवन करता है, वह तो मुक्त हो ही जाता है, उसके सङ्ग से सारा जगत् मुक्त हो जाता है' (२९.४८)। इस गीता के अन्तर्गत पाँच लघु गीताएँ–(पिङ्गलागीता, भिक्षुगीता, अवधूतगीता, ऐलगीता तथा हंसगीता) अन्तर्गर्भित हैं।

इस प्रकार श्रीकृष्ण के नैतिक चिन्तन एवं दर्शन की सार्वभौमिकता एवं सार्वकालिकता सिद्ध होतीहै तथा उनका

जगद्गुरुत्व भी निर्विवाद रूप में सिद्ध होता है।

श्रीकृष्ण और कुटिलनीति

श्री कृष्ण ने अनेक स्थलों पर शत्रुनाश के उपाय में कुटिलता का आश्रय लिया है, जो परिस्थितिवश कुटिलनीति के व्यावहारिक पक्ष की आवश्यकता को सुदृढ़ करता है। राजनीति के आचार्य शुक्र ने स्पष्टत: श्रीकृष्ण को कूटनीतिक माना है—

न कूटनीतिरभवच्छ्रीकृष्णसदृशो नृप: ।
अर्जुनं ग्राहिता स्वस्य सुभद्रा भगिनी छलात् [17] **।।**

वस्तुत: श्री कृष्ण के समान कपटी कोई नहीं हुआ जिसने अपनी भगिनी सुभद्रा छल से अर्जुनके लिए ग्रहण करवा दी। वस्तुत: राजनीति के चार उपायों—साम, दान, भेद तथा दण्ड में सोपानिक क्रम है। प्रथम उपाय से कार्य के असिद्ध होने पर द्वितीय को अपनाना चाहिए, दूसरे के असिद्ध होने पर तीसरे को तथा तीसरे के असिद्ध होने पर चौथा उपाय करना चाहिए] क्योंकि इन उपायों में दोष क्रमश: बढ़ता जाता है। इन चारों उपायों की असिद्धि होने पर युद्ध करना चाहिए जिसमें कुटिलनीति पूर्णत: धर्मसम्मत स्वीकार्य हो जाती है। वैशम्पायन का यही आशय प्रतीत होता है—

साम्ना दानेन भेदेन समस्तैरथवा पृथक् ।
साधितुं प्रयतेतारीन्न युद्धेत कदाचन ।।

शत्रु के नाश हेतु जब युद्ध के अलावा कोई विकल्प नहीं हो, तब सभी कुटिल उपायों का भी प्रयोग न्याय्य हो जाता है। स्वयं भगवान् का चरित इस बात का साक्षी है। त्रिविक्रम जब वामन का कपटी रूप धारण करते हैं, शूकर भी बन जाते हैं तथा नृसिंह भी बनते हैं, इनसे सिद्ध होता है अन्तिम उपाय के रूप में निन्दनीय उपायों को भी धारण करना चाहिए—

त्रिविक्रमोऽभूदपि वामनोऽसौ सशूकरश्चेति स वै नृसिंह:।
नीचैरनीचैरतिनीचनीचै: सर्वैरुपायै: फलमेव साध्यम् [18] **।।**

अत: कुटिल नीति की भी युद्ध आदि विशेष परिस्थिति में प्रासङ्गिकता सिद्ध होती है। महाभारत के युद्ध में भीष्म, द्रोणाचार्य, कर्ण,कीचक तथा दुर्योधन, जयद्रथ आदि के वध में कूटनीति का प्रयोग हुआ है। राम ने बालि वध में

कूटनीति का प्रयोग किया है। इस प्रकार श्रीकृष्ण भी धर्म संस्थापनार्थ इस कुटिल नीति के आश्रय लेने से इसके समर्थक माने जा सकते हैं।

श्रीकृष्ण का दर्शन एवं नैतिक चिन्तन सर्वदा मानवमात्र के लिए उपयोगी एवं महत्त्वपूर्ण है। दुष्टों के नाश में कूटनीति का प्रयोग भी व्यावहारिक दृष्टि से सर्वोत्तम उपाय है। वैदिक दर्शन के सभी सारभूत तत्त्वों को सुसंयोजित एवं सयुक्तिक प्रस्तुत कर विश्व के मानवीय जगत् के समक्ष एक अद्वितीय, विलक्षण, नैतिक एवं दार्शनिक योगदान कर श्रीकृष्ण ने वैदिक दिव्य ज्ञान की मूर्धन्यता सुप्रतिष्ठित की है तथा धर्मक्षेत्र कुरुक्षेत्र की धरा को महागौरव से मण्डित किया है।

सन्दर्भ

1. गीतामाहात्म्य - पद्य 1
2. साधकसंजीवनी - पद्य 1
3. महाभारत - मंगलाचरण / पद्य 1
4. योगवासिष्ठ - 52/31,32
5. योगवासिष्ठ - 55/1
6. श्रीमद्भगवद्गीता - 55/2
7. नीतिशास्त्र का सर्वेक्षण / पृ.202
8. श्रीमद्भगवद्गीता - 2/6,7
9. श्रीमद्भगवद्गीता - 2/16,17
10. श्रीमद्भगवद्गीता - 3/36
11. श्रीमद्भगवद्गीता - 6/37,38
12. श्रीमद्भगवद्गीता - 3/43
13. श्रीमद्भगवद्गीता - 2/62,63
14. श्रीमद्भगवद्गीता - 2/47,48
15. श्रीमद्भगवद्गीता - 18/65
16. श्रीमद्भगवद्गीता - 6/29,30
17. शुक्रनीति - 5/54
18. नीतिशास्त्र का सर्वेक्षण / पृ. 59